बा और बापू



आचार्य चतुरसेन

बा और बापू

आचार्य चतुरसेन

राजपाल एण्ड सन्ज

मूल्य दस रुपये (10.00)

संस्करण 1991 प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट दिल्ली 110006 द्वारा प्रकाशित
BAA AUR BAPU (Biography) by Acharya Chaturse

क्रम

बापू

गुजरात-काठियावाड में एक सुदामापुरी है, जो समुद्र के किनारे बहुत पुराना बदरगाह है। उसी सुदामापुरी मे एक गाधी परिवार रहता था। गुजरात-काठियावाड मे गाधी पसारी को कहते हैं। सो, कभी पुराने जमाने मे यह गाधी-परिवार 'पसारी' का काम करता होगा। पर उस समय --जिसको हम बात कहते हैं—यह परिवार तीन पीढियो से ही राजकोट मे दीवानगीरी कर रहा था। इसी परिवार मे बापू का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम कर्मचन्द गाधी था। गुजरात मे लोग अपने नाम के साथ पिता का नाम भी लगाते हैं, इसी से बापू अपना नाम 'मोहनदास कमचद गाधी' लिखा करते थे उनका अपना नाम मोहनदास था।

बापू का बचपन सुदामापुरी मे ही बीता। वे सात साल के थे जब पिता के साथ राजकोट आए। यही वे हाई स्कूल तक पढे। स्कूल मे ये झेंपू लडके थे, दुबले-पतले और बडे ही डरपोक। खेल-कूद मे इनका मन नही लगता था। ये बचपन से ही माता-पिता के बडे भक्त थे, मेहनती और सत्यवादी थे। ये हाई स्कूल मे पढ ही रहे थे, तभी इनका विवाह हो गया। इन्ही दिनो बुरी सगत से इन्हे मास खाने और बीडी-सिगरेट पीने का चस्का लग गया, पर जल्दी ही छूट भी गया। कभी-कभी यह बीडी-सिगरेट के लिए नौकर के पैसे चुरा लेते थे। एक बार सोना चुराया, पर पीछे पिताजी से क्षमा माग ली।

उन्नीस साल की उम्र मे यह बैरिस्टर बनने विलायत गए। अब तक इनके दो बच्चे हो चुके थे। बैरिस्टर बनकर जब ये भारत आए, तब यहा इनकी बैरिस्टरी नही चली। इसी बीच इन्हें एक मुकदमे के सिलसिले मे दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। ये वहा के भारतीयो के कष्टो को देखकर उनके साथ वहा की सरकार से उलझ बैठे। फिर तो उनकी, वहा की सत्याग्रह की लडाई दुनिया-भर में मशहूर हो गई।

बापू 'बा' से बहुत प्रेम करते थे। उन्होने लिखा है, "यदि मैं अपनी पत्नी के सम्बन्ध मे अपने प्रेम और अपनी भावना का बखान कर सकू तो हिदू धर्म के बारे मे अपने प्रेम और अपनी भावनाओ को प्रकट कर सकता हू। दुनिया मे किसी भी स्त्री के मुकाबले मेरी पत्नी ने मुझपर अधिक प्रभाव डाला है।"

बापू का उनके जीवन मे दो वस्तुओ ने राह दिखाई है—एक हिंदू धर्म ने और दूसरी 'बा' ने। इन दोनो जीवनदायी शक्तियो के सम्बन्ध मे मजे की बात यह है कि बापू इनमे से एक को भी पसन्द करने नही गए। 'हिन्दू धर्म' जन्म के साथ मिला और 'बा' बचपन मे। जिस तरह धर्म माता-पिता का मिला, उसी तरह 'बा' भी उनके माता-पिता ने ला दी। अपने जीवन के आरम्भ में बापू इन दोनो के बारे मे अज्ञानी थे। जिस तरह उन्होने हिन्दू धर्म को पूरी तरह बिना जाने ही अपना धार्मिक जीवन आरम्भ किया, उसी तरह 'बा' के महत्त्व और गुणो को बिना जाने-पहचाने उन्होने अपनी गृहस्थी शुरू की। परन्तु उन्होने इन दोनों को समझने की भरपूर चेष्टा की, दोनो को श्रद्धा और प्रेम से अपनाया और इन दोनो की मदद से अपने जीवन को सफल किया। उन्होंने हिन्दू धर्म के मर्म को समझा और उसे नया रूप दिया। और फिर उसीके प्रभाव से वे आज की दुनिया के सबसे बड़े सत और महात्मा बन गए। इसी तरह 'बा' के साथ रहकर

वे पति-पत्नी के सम्बन्धो और गृहस्थी-जीवन को पवित्र बनाते गए और अपने युग के करोडो स्त्री-पुरुषो के 'बापू' बन गए।

'बापू' बडे ज़िद्दी और धुन के पक्के थे। किसी न किसी शारीरिक कष्ट को भोगने का उनका आग्रह बना ही रहता था। दक्षिण अफ्रीका मे सन् 1904 में बापू के जीवन ने करवट लेना आरम्भ किया और उनमें क्रान्तिकारी उलट-पलट हुई। उनके जीवन की उलट-पलट का उनका आग्रह इतना तेज़ और ज़बर्दस्त था कि उनके सगे-सम्बन्धियो और मित्रो को भी उनका साथ निभाना दूभर हो गया। उनका प्रेम एक तरह का ज़ुल्मी प्रेम था।

इसीसे स्वर्गीय गोखले ने एक बार उन्हे हसी-हसी मे कहा था, "गांधी, तुम बडे ज़ालिम हो। एक ओर से तुम्हारा प्रेम और दूसरी ओर से तुम्हारा आग्रह, दूसरे पर इतने ज़ोर से असर करते हैं कि बेचारा तुम्हारी इच्छा के अनुसार चलने और तुम्हे खुश करने को मजबूर हो जाता है।"

श्रीमती सरोजिनी नायडू भी बहुधा बापू को अपने पत्रो मे, 'माई डियर टायरेंट' (मेरे प्यारे ज़ालिम) लिखा करती थी। बापू का तप सूरज की तरह तपता रहा। सूरज का ताप जैसे दुनिया के लिए होता है, उसी तरह बापू का ताप दुनिया के लिए कल्याणकारी था। परन्तु जैसे सूरज के ताप से बहुत पास जाने वाला जल जाता है, उसी तरह बापू के बहुत पास रहना भी आसान न था। बापू के पास रहना एक बडी तपस्या थी। 'बा' उनकी तपस्या की जीती-जागती साधना थी। 'बा' के प्रभाव से बापू के पास रहने वाले बापू के ताप से झुलसने से बचे रहते थे। उन्ही के कोमल प्रेमी स्वभाव से साधारण जन भी आश्रम मे रह सके।

बापू का नाम देश-देशान्तरो मे दूर-दूर तक फैला हुआ था। उनका नाम इतना परिचित हो गया था कि शायद ही किसी देश

का किसान या मजदूर ऐसा हो जो कि बापू को मनुष्य-मात्र का मित्र न समझता हो। लोग समझते थे कि बापू दुनिया मे 'सतयुग' लाने वाले हैं।

बापू बन्धनमुक्त जीवन के जन्मदाता थे। उनकी पवित्रता और तेज का प्रभाव राजा और रक, सब पर एक-सा पडता था। उनका कहना था—सच्चे रहो, और हृदय को निमल और सरल रखो, दु ख मे भी प्रसन्न रहो तथा भय आने पर स्थिर रहो। जीवन मे प्रीति रखो और मृत्यु से मत डरो।

बापू से लाखो-करोडो नर-नारियो को प्रेरणा मिली। उन्होने ही भारत को आजादी दिलाई। वे ऐसे खरी-खरी कहने वाले थे कि एक बार होरेस एलेग्जैण्डर ने, जो एक नामी अग्रेज थे, जब बापू से पूछा, "क्या आप अग्रेजो के लिए कोई सदेश देंगे?" तो बापू ने झट कहा, "सबसे पहली बात हम यह चाहते हैं कि आप लोग अब हमारी गर्दन पर सवार न रहे।"

बापू की सफलता का कारण उनका सत्य और त्याग था। लोग सेवा करते हैं और उस पूजी को लेकर खूब लाभ उठाने की खटपट करते हैं। बापू ऐसे लोगो मे नही थे। उनके जीवन का नाम ही त्याग था, वे स्वय त्याग-रूप थे। उन्हे किसी शक्ति, किसी पद पदवी या दौलत और यश का लालच न था। उनका त्याग और बलिदान इसलिए और भी महान् बन गया था कि उसके साथ वे पूरे निर्भय भी थे। महाराज और सरकार, सगीनें और बदूकें, जुल्म और काल कोठरी, यहा तक कि मृत्यु भी उनके मन पर एक रेखा तक खीचने मे असमर्थ थी। वे यथार्थ मे मुक्तात्मा थे।

उनके जीवन मे बचपन की सरलता, सत्य के प्रति अटल आग्रह और मानवता के प्रति अटूट प्रेम था। इन्ही सब गुणो के कारण उस महापुरुष मे ससार के भविष्य को बदलने की

सामर्थ्य आई।

एडवर्ड टामसन लिखता है

"भारतवर्ष इतना बिखरा हुआ—दरारो से पूर्ण, टुकडे-टुकडे हुआ और चिप्पिया लगा हुआ देश था, जितना इस धरती पर और कोई राष्ट्र न था। बुद्ध के बाद पहली बार उसे ऐसी हलचल का ज्ञान हुआ, जो उसके कोने-कोने मे फैल गई, ऐसे श्वास और स्वर का पता लगा जिसको सब जगह अनुभव किया गया और सुना गया। यद्यपि उसके शब्द हर बार समझ मे नही आए। राष्ट्रीय आन्दोलन मे अधिक अच्छे वक्ता तथा अधिक विद्वान् लोग हुए हैं, परन्तु ऐसा आदमी एक ही है, जिसने भारत के नर-नारियो के हृदय मे यह बात जगा दी कि उसका तथा उनका रक्त-मास एक ही है। उसने ऐसी भावनाओ तथा आशाओ को जगाया, जो किसी भी राजनीतिक दल-बदी से अधिक व्यापक थी। उसने आने वाली पीढी के लिए भारतवासियो के मार्ग की दिशा ही बदल दी है।"

'बा'

'बा' बापू से छ महीने बडी थी। उन दिनो काठियावाड मे लडकियो को कोई पढाता-लिखाता न था। इसलिए 'बा' बचपन मे बिलकुल अपढ थी। पर घर के कामकाज मे बडी सुघड थी। पिता के सस्कारी वैष्णव परिवार के उत्तम गुण उन्हे विरासत मे मिले थे। जब 'बा' के साथ बापू की सगाई हुई, तब 'बा' सात साल की थी और बापू साढे छ साल के बालक थे। तेरह साल की उम्र मे 'बा' का ब्याह हो गया। ब्याह का बापू को कुछ भी ज्ञान न था—न उनसे कुछ पूछा गया था। केवल धूमधाम से उन्हें पता चला कि ब्याह होने वाला है। वे बहुत खुश थे। खुशी का कारण यह था कि अच्छे-अच्छे कपडे पहनने को मिलेंगे, बाजे बजेंगे, जुलूस निकलेंगे, बढिया खाना और मिठाई मिलेगी, एक नई लडकी के साथ हसी खेल करेंगे।

ब्याह के बाद कुछ दिन तो दोनो एक दूसरे से कुछ डरते और शर्माते-से रहे। फिर धीरे-धीरे एक-दूसरे को पहचानने लगे, बोलने लगे। 'बा' अपढ थी, स्वभाव की सीधी थी, पर तबीयत की आज़ाद। मेहनती खूब थी। बापू से बहुत कम बोलती थी। उन्हे अपने अपढ होने का कुछ विचार ही न था। बापू उन्हे पढाना चाहते थे, पर 'बा' का मन पढने मे न लगता था। बापू उन्हें जबरदस्ती पढाना चाहते थे, पर वे दिन मे तो बडे-बूढो के सामने 'बा' की ओर देख भी न सकते थे। 'बा' घूघट निकालकर बापू के सामने आ पाती थी। रात को एकान्त मे उन्होंने 'बा' को

ज़बर्दस्ती पढाने की जो कुछ चेष्टा की भी, वह बेकार हो गई। 'बा' अपढ तो थी, पर ऐसी नहीं थी कि अपनी स्वतन्त्रता को न समझ सकें। वे लम्बी बहस नही करती थी, पर अपने मन की करने मे वे किसीके दाबे दबती नही थी। इससे बापू चिढ जाते थे। वे ईर्ष्यालु और वहमी पति थे। घमण्डी भी थे ही। परन्तु 'बा' अनपढ और कम उम्र होने पर भी यह अच्छी तरह समझती थीं कि अपने लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा। इसीसे सयाने होने तक उनकी गृहस्थी निभती गई, और बहुत-से अवसरो पर कलह होते होते टल गया। बापू खुद कहते हैं कि हमारे बीच झगडे तो खूब हुए, लेकिन परिणाम हमेशा शुभ ही रहा। असल में 'बा' ने अपनी अद्भुत सहन-शक्ति से बापू पर विजय पाई।

अपने जीवन मे बापू ने तप और सयम के बडे-बडे प्रयोग किए। अत में तो उनका जीवन ही तपोमय बन गया। वे एक महान् विचारक, मनीषी, महाज्ञानी और ऐसे युग-पुरुष थे, जो अपने जीवन मे एक के बाद एव अनेक हेर-फेर करते ही चले गए। इधर 'बा' थी अनपढ। फिर भी वे उनके ऊर्ध्वगामी जीवन मे कदम-कदम साथ ही रही। उन्होने मन से या बेमन से, ज्ञान से या अज्ञान से बापू के पीछे-पीछे विश्वासपूर्वक चलने मे ही अपना जीवन सफल समझा। इतना ही नही, 'बा' ने अपनी नम्रता-सौम्यता से बापू को महात्मा बनने मे भारी सहायता दी, और महात्मा बनने के बाद उनके जीवन को कठोर और रूखा होने से रोककर उन्हे अपने सुहाग के आचल मे बाधे रखकर ससार का 'बापू' बनाया। यह कोई साधारण काम न था। बापू जैसे महा-मानव के साथ चलने में उन्हें भूकम्प के भारी धक्के सहने पडे और ज्वालामुखी के खौलते हुए लावो का प्रकोप सहना पडा। अपने अथाह आत्मबल और अपूर्व समर्पण की भावना के बल से, वे इस विभूतिमय दाम्पत्य की सम्पदा की सारी जोखिम लेकर

जीवन के दुस्तर सागर को कुशल तैराक की तरह पार कर गईं।

युग-युग पुरानी बात है, सत्ययुग था या त्रेतायुग, जबऋषि-मुनि गृहस्थ होते थे। गृहस्थ-जीवन उनके तप-त्याग के जीवन में बाधक नहीं होता था। इस कलिकाल में वैसा ही तप और त्याग का दाम्पत्य 'बा' ने निर्माण किया। बापू ने लिखा है

"हम असाधारण पति-पत्नी थे। 1906 में एक-दूसरे की रज़ामंदी से और अनजानी आज़माइश के बाद हमने सदा के लिए संयम का व्रत ले लिया था। इससे हमारी गांठ पहले से कहीं अधिक मज़बूत बनी और मुझे उससे बहुत आनन्द हुआ। हम दो आदमी नहीं रह गए। मेरी वैसी कोई इच्छा न थी, तो भी उन्होंने मुझमें लीन होना पसन्द किया। इससे वे सचमुच ही मेरी अर्धांगिनी बनीं। वे हमेशा से बहुत दृढ़ इच्छा-शक्ति वाली स्त्री थीं। अपनी नव-विवाहिता दशा में मैं उन्हें भूल से हठीली माना करता था, लेकिन अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति के कारण वे अनजाने ही अहिंसक असहयोग की कला के आचरण में मेरी गुरु बन गईं।"

अपरिग्रह की दीक्षा

अपरिग्रह एक तप है। यदि वह पति के कारण पत्नी को करना पड़े तो और भी कठिन है।

सन् 1899 की बात है। बापू जब दक्षिण अफ्रीका से जाने लगे तो वहा के भारतीय मित्रो ने बापू का अनेक मानपत्रो द्वारा स्वागत-सत्कार किया। बहुत-सी कीमती वस्तुए भेंट मे दी। उनमे पचास गिन्नी के मूल्य का एक हार कस्तूरबा के लिए भी था।

जिस साझ को ये उपहार मिले, उस रात बापू सो नही सके। पागल की तरह रात-भर जागते और बेचैनी से अपने कमरे मे चक्कर काटते रहे, लेकिन उलझन नही सुलझी। सैकडो की कीमत के उपहारो को छोड देना बहुत कठिन था, परन्तु उनका रखना उससे भी अधिक कठिन था।

उनके मन मे तूफान उठ रहा था, वे सोच रहे थे कि जब मैं यह कहता हू कि सेवा का कोई बदला नही लेना चाहिए तो ये गहने और जवाहरात मैं कैसे रख सकता हू। अन्त मे उन्होंने निणय किया कि मुझे ये चीजें कदापि नही रखनी चाहिए। उन्होने तुरन्त उन भेंटो और गहनो का एक ट्रस्टी नियत किया और इसका एक मसविदा तैयार करके तब चैन से सोए।

परन्तु अभी एक और कठिनाई थी, वे डर रहे थे कि 'बा' को समझाकर उनसे हार वापस लेना कठिन होगा। बच्चे कदाचित् राजी हो जाए।

और प्रात काल जब बापू ने बच्चो से अपनी इच्छा प्रकट की तो वे तुरन्त राजी हो गए। उन्होंने 'बा' को राजी करने का भार भी अपने सिर लिया। किन्तु जब 'बा' के सामने बात आई तो 'बा' बिखर गई, उन्होंने कहा, "तुम्हें और तुम्हारे लडको को चाहे इन गहनो की जरूरत न हो। बालको का क्या ? जैसा समझाओगे समझ जाएगे। मुझे भी मत पहनने दो, पर मेरी बहुओ का क्या होगा ? ये उनके काम आएगे। कौन जाने कल क्या होगा, फिर मैं इतने प्रेम से दी हुई वस्तुओ को लौटाऊ कैसे ? वाग्धारा के साथ 'बा' की अश्रुधारा भी बह चली।

बापू ने धीरे से कहा, "लडको की शादी अभी होने की नहीं, हमे इन्हे बचपन मे ब्याहना ही नही है, बडे होने पर ये जो ठीक समझेंगे वही करेंगे और हमे गहनो की शौकीन बहुए नहीं ढूढनी हैं। फिर भी यदि कुछ बनवाना ही हुआ तो मैं हू ही।"

"तुम्हे मैं जानती हू, तुम वही हो न, जिसने मेरे अपने गहने भी छीन लिए। जब तुमने मुझी को सुख से नही पहनने दिया तो मेरी बहुओ के लिए क्या लाओगे ? ये गहने नहीं लौटेंगे, फिर, मेरे हार पर तुम्हारा हक क्या है ?"

बापू ने तनिक दृढ आवाज मे कहा, "लेकिन यह हार तुम्हें तुम्हारी सेवा के लिए मिला है या मुझे ?"

"कुछ भी हो, तुम्हारी सेवा मेरी भी हुई। मुझसे रात दिन मजूरी कराई, सो क्या सेवा नही मानी जाए ? मुझे रुला-रुलाकर हर किसी को घर मे रखा और उसकी भी खिदमत करवाई, इसका कुछ हिसाब ही नही है ?"

वाद-विवाद बहुत हुआ। परन्तु 'बा' को गहने लौटाने पडे। वे ट्रस्टियो की इच्छानुसार सार्वजनिक कामो मे उपयोग करने के लिए उन्हें दे दिए गए।

पुण्य स्मरण

उन दिनो बापू डरबन मे वकालत करते थे। तब बहुधा उनके कारकुन उन्ही के साथ रहते थे। उनमे गुजराती और मद्रासी, हिन्दू और ईसाई सभी थे। एक कारकुन ईसाई था, परन्तु उसके माता-पिता पचम जाति के थे। बापू के घर की बनावट यूरोपीय ढग की थी। कमरो मे मोरी नही थी। इसलिए हर कमरे मे पेशाब के लिए अलग एक बर्तन रखा रहता था। उसे साफ करने का काम नोकर नही, प्रत्युत पति-पत्नी—बापू और 'बा' किया करते थे। हा, जो कारकुन अपने को घर का ही समझने लगते थे, वे अपना बतन स्वय साफ कर डालते थे। पर ये पचम कुलोत्पन्न कारकुन नए थे, उनका बर्तन या तो बापू को या 'बा' को साफ करना चाहिए। 'बा' बापू को भला क्यो साफ करने देती ? फिर भी दूसरे बर्तन तो 'बा' उठाकर साफ कर देती थी, पर इन पचम कुलोत्पन्न महाशय का बर्तन साफ करना उन्हें सहन नही हुआ। पति-पत्नी मे झगडा हुआ। बापू उठाते हैं, यह 'बा' नही देख सकती थी और वे स्वय उठाना पसद नही करती थी। परन्तु हालत लाचारी की थी। 'बा' आखो से आसू ढरकाती लाल-लाल आखो से बापू की ओर देखती, बतन लेके सीढी उतर रही थी। बापू ने देखा तो सहन न कर सके। उन्हें तो तभी सतोष हो सकता था जब वे उसे हसते-हसते ले जाए वे गरज उठे, "मेरे घर मे यह ढग नही चल सकता !"

'बा' भी खौल उठीं—बोलीं, "तो अपना घर अपने पास रखो,

मैं चली ।" बापू ने गुस्सा होकर 'बा' का हाथ पकड़ा, उन्हें धीरे से दरवाजे तक खींच लाए और आधा दरवाजा खोल दिया ।

आसुओं का मेंह बरसाती हुई 'बा' ने कहा, "तुम्हें तो शर्म नहीं, पर मुझे है । जरा शर्म करो, मैं बाहर निकलकर जाऊं कहां ? यहां मां-बाप भी तो नहीं कि उनके पास चली जाऊं। मैं औरत ठहरी । इसलिए मुझे तुम्हारी चपत खानी ही होगी। अब तनिक शर्म करो और दरवाजा बंद कर लो । कोई देखेगा तो फजीता होगा ।"

बापू ने लज्जित होकर दरवाजा बन्द कर लिया ।

बैरिस्टर का घर

सन् 1905 मे बापू जोहान्सबर्ग मे बैरिस्टरी करते थे। उस समय के बापू की गृहस्थी का वर्णन श्रीमती पोलक ने अपनी पुस्तक 'गाधी—द मैन' में इस प्रकार किया है

"घर शहर के बाहर एक अच्छे मध्यम श्रेणी के लोगो के मुहल्ले मे था। दुमजिला और अलग अहाते वाला बगलानुमा घर था। अहाते मे बगीचा था और सामने छोटी-छोटी टेकरियो वाला खुला मैदान था। मकान मे कुल आठ कमरे थे। दुमजिले पर का बराडा लम्बा-चौडा और खूब हवादार था। गर्मियो मे वहा सोया जा सकता था। सोने के लिए ही उसका उपयोग होता था।

"परिवार मे गाधीजी, उनकी पत्नी और तीन बालक थे। मणिलाल ग्यारह साल के थे, रामदास नौ और देवदास छ साल के थे। हरिलाल उन दिनो देश गए हुए थे। इनके सिवा तारघर मे काम करने वाले एक नवयुवक अग्रेज, गाधी जी के एक हिन्दुस्तानी युवक सम्बन्धी और श्री पोलक, इतने लोग और थे। मैं उनमे आ मिली, जिससे मकान मे और अधिक के लिए सहूलियत नही रह गई।

'सवेरे छ बजे घर का पुरुष वर्ग चक्की पीसता था क्योकि रोटी घर ही मे बनाई जाती थी। एक कमरे मे चक्की रखी गई थी, वही सब इकट्ठे होते थे। पीसने का काम तो कोई घण्टे मे समाप्त हो जाता था, किन्तु चक्की की आवाज़ बातचीत और हसी की होती थी। उन दिनों हसी के फव्वारे घर में बराबर छूटते

रहते थे। उपयोगिता की दृष्टि से इस काम के महत्त्व के सिवा इससे प्रात अच्छी कसरत भी हो जाती थी। दूसरी कसरत रस्सी कुदान की होती थी, बापू इसमे उस्ताद थे।

"घर मे सध्या की ब्यालू का समय अधिक से अधिक आनन्द मय रहता था। घर के सभी लोग उसी समय एक जगह जमा होते थे। बापू को मेहमानदारी का बडा शौक था, इसलिए ऐसा दिन कदाचित् ही कोई बीतता, जब कोई न कोई मेहमान न आ जाता हो। प्रतिदिन सायकालीन भोजन में दस से पद्रह तक आदमी अवश्य होते थे। भोजन की चीजें बहुत सादी होती थी। मेज पर सब चीजें सजाकर ही खाने बैठते थे, इसलिए परोसने के लिए नौकर के खडे रहने की आवश्यकता नही रहती थी। भोजन से पहले दो-तीन साग, भाजी, कढी, दाल, सिकी हुई रोटिया, मूग-फली या किसी दूसरी चीज को पीसकर बनाया गया मक्खन, भिन्न भिन्न सागो को काटकर बनाया हुआ कचूमर, ये चीजें परोसी जाती थी। दूसरी दफा दूध और फल, ऋतु के अनुसार काफी, लेमोनेड भी दिया जाता था। भोजन करने मे जल्दी नही की जाती थी। मेज पर पूरा एक घटा लग जाता था। खाते-खाते अनेक विषयो की चर्चा हुआ करती थी। परन्तु विषय साधारण तथा हसी मजाक और गपशप तथा हलके होते थे। कोई भी हसी की बात निकलने पर बापू खूब हसते थे।"

बापू का वैभव

बात फिनिक्स आश्रम की है। सन् 1913 का साल था। एक दिन प्रात काल कोई 11 बजे बापू खाने को मेज पर बैठे भोजन कर रहे थे। उनके पास उनके परिवार के एक बुजुर्ग कालीदास गाधी, रावजी भाई और मणिभाई पटेल बैठे थे। कालीदास गाधी टूटाग मे रहते थे और वहा से कुछ दिन के लिए आए थे। 'बा' खडो-खडी रसोई घर मे सफाई का काम कर रही थी। सब लोग पहले ही खा-पी चुके थे। दक्षिण अफ्रीका मे मामूली व्यापारी के यहा भी घर के कामकाज के लिए नौकर-चाकर रहते थे। यहा 'बा' को सब काम करते देख कालीदास भाई ने बापू से कहा, "भाई, तुमने तो जीवन मे बहुत हेरफेर कर डाला। बिल्कुल सादगी अपना ली। इन कस्तूर बाई ने भी कोई वैभव नही भोगा।"

बापू ने खाते-खाते कहा
"मैंने कब इन्हे वैभव भोगने से रोका !"
'बा' ने तुरन्त हसते हसते कहा
"तो तुम्हारे घर मे मैंने क्या वैभव भोगा है ?"

बापू ने हसते-हसते कहा, "मैंने तुझे गहने पहनने से या अच्छी रेशमी साडिया पहनने से कब रोका है ? जब तूने चाहा, तब तेरे लिए सोने की चूडी भी बनवा लाया था न ?"

"तुमने तो सभी कुछ ला दिया था, पर मैंने उसका उपयोग कब किया ? देख लिया, तुम्हारा रास्ता जुदा है, तुम्हें तो साधु-सन्यासी बनना है, तो फिर मैं शोक मनाकर क्या करती ? तुम्हारी तबीयत को जान लेने के बाद मैंने अपने मन को मना लिया।"

'बा' ने गम्भीर मुद्रा में उत्तर दिया।

दु ख मे विनोद

उन दिनो बापू दक्षिण अफ्रीका मे रह रहे थे। सन् 1913 की बात है। आजकल जेल जाना बहुत आसान बात हो गई है, परन्तु उन दिनो तो जेल के नाम से लोग काप जाते थे। और यह तो कोई कल्पना भी नही कर सकता था कि कोई भले घर की महिला भी स्वेच्छा से जेल जा सकती है।

उन दिनो दक्षिण अफ्रीका मे एक ऐसा कानून पास हुआ था कि ईसाई धर्म के अनुसार किए गए विवाह के सिवा जो विवाह-विभाग के अधिकारी के यहा दर्ज हुए हो—दूसरे सब विवाह—जो हिन्दू मुसलमान-पारसी आदि धर्मों के अनुसार किए गए हो—रद्द मान लिए गए। इसका यह अर्थ था कि सब विवाहिता भारतीय महिलाओ का दर्जा उनके पति की धर्म पत्नी का न होकर रखेली का मान लिया गया। यह एक ऐसी अपमानजनक बात थी, जिसे कोई स्त्री-पुरुष नही सहन कर सकता था। बापू ने वहा की सरकार से इस कानून को रद्द करने की बातचीत की, परन्तु सरकार ने एक न सुनी। तब बापू ने 'सत्याग्रह' की लडाई छेड दी, और उसमें सम्मिलित होने के लिए महिलाओ को भी न्योता दिया। परन्तु 'बा' से कुछ नही कहा। उन्होने सोचा, मैं कहूगा तो वह इन्कार नही करेगी, पर उसकी हा की कीमत क्या? वे चाहते थे कि जोखिम के कामो में स्त्री स्वय ही जो निश्चय करे, वही पुरुष को मान लेना चाहिए। तथा वह कुछ भी न करे तो पति को उसके सम्बन्ध मे कुछ दु ख नही करना चाहिए।

उन्होने और महिलाओ को तो सत्याग्रह मे सम्मिलित होने की प्रेरणा दी पर 'बा' से कुछ न कहा।

परन्तु 'बा' ने भी पति का मतलब भाप लिया। एक दिन उन्होंने यो बातचीत की

"तुम मुझसे इस बात की चर्चा क्यो नही करते ? मुझमे ऐसी क्या कमी है कि मैं जेल नही जा सकती ? मुझे भी उसी रास्ते जाना है जिस रास्ते जाने की सलाह तुम और बहिनों को देते हो।"

बापू ने कहा, "मैं तुम्हें दु ख पहुचा नही सकता। तुम्हारे जेल जाने से मुझे सुख मिलेगा, परन्तु मैं यह पसद नही करता कि तुम मेरे कहने से जेल जाओ। ऐसे काम तो सबको अपनी अपनी हिम्मत पर करने चाहिए। तुम सह सको तो जाओ।"

"मेरे बच्चे सह सकते हैं, तुम सह सकते हो, फिर मैं क्यो नही सह सकती ? ऐसा तुमने कैसे मान लिया ? मुझे तो इस लडाई मे सम्मिलित होना है।"

"तो मैं तुम्हे लेने को तैयार हू, पर मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो, भीतर से तुम्हारा मन पक्का हो तो जाना, अब भी सोच लो।"

"मुझे सोचना कुछ नही। मेरा निश्चय दृढ है।'

इस प्रकार 'बा' दूसरी महिलाओ के साथ बालक्रस्ट जेल मे दाखिल हुई। जिस दिन वे जेल मे गईं, उसके दूसरे ही दिन एक मजेदार घटना घटी। वहा का जेलर गुजराती या हिदुस्तानी नहीं जानता था। परन्तु उसे उनके नाम, पते और पहचान लिखनी थी। जेलर ने श्री छगनलाल गाधी को दुभाषिये का काम करने को आफिस बुलाया और कारकुन से कहा कि वह प्रश्न करे और उत्तर लिखे।

कारकुन—('बा' को दिखाकर अग्रेजी मे) "यह जो खडी हैं,

इनका नाम पूछो।"

छगनलाल गाधी—('बा' से गुजराती मे) "क्यों 'बा' जेल की पहली रात कैसी बीती ?"

बा—(गुजराती मे) "हम तो अधेरा होने के बाद भजन-कीर्तन करके आराम से सो गई।"

छगनलाल—(कारकुन से) "इनका नाम कस्तूरबा।"

कारकुन—('बा' को दिखाकर अग्रेजी मे) "इनका ब्याह हुआ है ?"

छगनलाल गाधी ('बा' से गुजराती में) "रात ब्यालू किया था ?"

बा—(गुजराती मे) "कहा ? मुझे तो फलाहार चाहिए, इन सबने तो आए हुए रोटी और साग को सूघकर रख दिया। भला देखो तो—ऐसे घिनौने बर्तन में कैसे खाया जाए ? और ऐसा साग कोई कैसे मुह मे डाले ?"

छगनलाल गाधी—(कारकुन से अग्रेजी मे) "इनका विवाह हो चुका है इनके पति का नाम मोहनदास कमचन्द गांधी है।"

इसी प्रकार आयु, जाति, देश आदि के अनेक प्रश्न चारों महिलाओ से पूछे गए और श्री छगनलाल गाधी ने युक्ति से पहली रात के पूरे समाचार जान लिए और बापू को जा सुनाए।

'बा' का इलाज

जब 'बा' मैरित्सबर्ग जेल से रिहा हुई, उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। बाहर आने पर तो रोग ने उग्र रूप धारण कर लिया। डाक्टरो ने बहुत दवा-दारू की, पर रोग बढता ही गया। अन्त मे बापू ने कहा, "यदि तुझे मुझपर विश्वास हो तो अब मैं अपने प्रयोग करू।"

'बा' ने मजूर कर लिया।

बापू ने 'बा' से चौदह उपाय कराए और नीम का सेवन करवाया। प्रात बापू स्वय 'बा' को दातून कराते, काफी भी स्वय बनाकर पिलाते, एनीमा देते। जैसे-जैसे धूप बदलती जाती, 'बा' की खटिया को वे हटाते रहते। सध्या को फिर उठाकर भीतर ले जाते। इस प्रकार बापू ने 'बा' को अपनी सेवा और प्रेम से ही चगा कर लिया।

घर मे सत्याग्रह

एक बार 'बा' को रक्तस्राव का रोग हो गया। बहुत दवा-दारू की, आपरेशन भी कराया, परन्तु लाभ नही हुआ। इसपर बापू ने 'बा' से कहा, "तुम दाल और नमक खाना छोड दो।"

बापू ने इसके लाभो का बहुत-सा वर्णन किया, बहुत मनाया, अपने कथन के समर्थन मे इधर-उधर की बहुत बातें पढ़कर सुनाईं, पर 'बा' ने नही माना। अन्त मे उन्होने कहा, "दाल और नमक को तुमसे भी कोई कहे, तो तुम भी नही छोड सकते।"

बापू ने कहा, "मुझे रोग हो और कोई वैद्य-हकीम कहे, तो मैं तुरन्त छोड दू। परन्तु लो, तुम छोडो या न छोडो, मैंने एक वर्ष के लिए नमक और दाल-सेवन अभी, इसी समय से त्याग दिया।"

'बा' बहुत पछताईं। कहने लगी, "मेरी मत मारी गई, तुम्हारा स्वभाव जानते हुए भी हठ ठान बैठी। अब तो मैं दाल और नमक नही खाऊगी, परन्तु तुम अपनी बात लौटा लो। नही तो यह मेरे लिए बडी भारी सजा हो जाएगी।"

बापू ने कहा, "तुम नमक और दाल छोड दोगी तो बहुत ही अच्छा होगा, उससे तुम्हे अवश्य लाभ होगा। परन्तु मैं ली हुई प्रतिज्ञा को नही लौटा सकता। आदमी किसी भी बहाने में सयम पाले, उसे लाभ ही होता है।"

'बा' ने आखो मे आसू भरकर कहा, "तुम बडे हठीले हो, किसी की बात मानते ही नही।"

खादी धारण

बापू ने जब रोलट-ऐक्ट के विरुद्ध छेडे गए सत्याग्रह-सग्राम को रोक दिया तब 'स्वदेशी' के काम को पूरी लगन से उठाया। उस समय के स्वदेशी व्रत मे कुछ महीनो तक तो मिल के कपडों को भी स्वीकार किया गया था, परन्तु थोडे ही दिन बाद बापू ने देख लिया कि मिल के कपडे का प्रचारक बनने की जरूरत नहीं है। आवश्यकता तो इस बात की है कि परदेश से आने वाले कपडे की रोक के लिए अधिक कपडा तैयार किया जाए और यह काम चर्खे से अच्छी तरह हो सकता है। इसलिए बापू ने सबसे आग्रह किया कि वे चर्खा चलाए और खादी पहनें। परन्तु पहले पहल बडे पने की खादी नही बुन सकी। सैंतीस इच पने की खादी भी कठिनाई से बुनी जाती थी। तब तो धोती या साडी खादी की पहननी हो तो छ या सात नम्बर के असमान सूत की और कम पने की ऐसी खादी को जोडकर ही पहनी जा सकती थी। परन्तु इस तरह जोडकर बनाई गई साडी का वजन सेर-डेढ सेर तो होता ही था। बापू के हुक्म से ऐसी वजनी और मोटी साडिया जब आश्रम की बहिनों को पहननी पडी तब उन्होने कहा, "ये तो बहुत भारी पडती हैं। हमसे उठाए उठती भी नही।" तो बापू ने बहिनो को हसकर कहा, "क्यो नही, नौ-नौ महीने तक बच्चे को पेट में धारण करने वाली बहिनो को देश की खातिर, अपनी गरीब बहिनो की आबरू की खातिर, यह इतनी-सी साडी

भारी क्यों लगनी चाहिए?"

बापू की इस दलील पर आश्रम की बहिनों ने साडी के बदले पहने की बात तो फिर न कही, पर वे ऐसी भारी-भारी मोटी साड़ियो को रोज-रोज धोने की कठिनाई की जोर-जोर से बापू के सामने शिकायत करने लगी। तो भी बापू हसकर जवाब देते "हम तुम्हारी साड़िया धो देंगे।" इस तरह हसी-विनोद में कठिनाइया सरल होती रही। आश्रम की बहिनों की ओर से 'बा' अगुआ बनकर उलाहना देती। बापू बहुधा आश्रम की बहिनो से कहते, " 'बा' को बूट मोजा पहनाने मे मुझे उसकी बहुत खुशामद करनी पडती थी, फिर उनको छडाने मे भी कुछ न कुछ खुशामद करनी पडती, पर खादी की साडी पहनने मे उससे अधिक खुशामद करनी पडेगी।" आश्रम मे सबसे पहले सरलादेवी चौधरानी ने खादी की साडी पहनी, उसके बाद 'बा' ने और फिर आश्रम की सब महिलाओ ने। पीछे तो बडे पने की खादी भी बुनी जाने लगी। और खुद कातनेवालो के लिए तो साडी की कोई दिक्कत ही न रह गई। 'बा' तो फिर अपने जीवन मे खादी मे ऐसी लिप्त हुई कि एक बार उनके पैर की छोटी उगली मे खून निकला। 'बा' खादी की पट्टी बाधने जा रही थी, इतने मे एक बहिन ने महीन कपडे की पट्टी ला दी और कहा, "इस महीन कपडे से रगड नहीं लगेगी, और पट्टी अच्छी तरह बधेगी।" परन्तु 'बा' ने तुरन्त कहा, "मुझे खादी की पट्टी ही चाहिए, वह खुरदरी भी होगी तो मुझे नही चुभेगी।" उन्होने खादी की ही पट्टी बाधी।

जब बापू ने 'आगाखां महल' मे उपवास आरम्भ किया, तब 'बा' उनसे मिलने वहा आईं। जाने के समय आश्रम की बहिनों को उन्होने आश्रम मे पडे अपने सब कपडे बाट दिए। परन्तु आग्रहपूर्वक यह आदेश दिया कि बापू के अपने हाथ से कती और मेरे लिए खास तौर पर तैयार की गई साडी तो मुझे जेल

में भेज ही देना। मरने के बाद मेरी देह पर वही साड़ी लपेटनी है।

साधारणतया 'बा' की साड़ी अपने काते सूत की ही बनती थी। और 'बा' चिता पर चढ़ी तब भी बापू के हाथ से कते सूत की साड़ी उनके शरीर पर शोभायमान थी।

'ही आलवेज़ मिसचीफ'

सन् 23 या 24 की बात है। बापू यरवदा जेल के कैदी थे। एक बार उन्होंने जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट से एक कैदी की खुराक के सम्बन्ध मे कुछ माग की, परन्तु सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उसे नामजूर कर दिया। बापू ने इसके विरोध मे अपना नियमित भोजन त्याग दिया और केवल दूध पर रहने का निश्चय किया। इस तरह चार सप्ताह बीत गए और बापू कुछ कमज़ोर हो गए। इस समय 'बा' उनसे मिलने जेल मे गईं, तो ज़ीना चढते हुए बापू के पैर लडखडा गए। बापू की यह शारीरिक कमज़ोरी 'बा' की सावधान निगाहो से न छिपी। उन्होने इसका कारण पूछा और बापू को सच्ची बात कहनी पडी। इसपर 'बा' और उनके साथ जाने वाले परिजनो ने बापू से फल लेने का हठ किया। जेल का अग्रेज़ सुपरिण्टेण्डेण्ट भी उस समय वही खडा था—उसने 'बा' को जब बापू पर दबाव डालते देखा, तो कहा, "देखिए, मिस्टर गाधी जो ये सब करते हैं, इसमे मेरा कोई दोष नही है।" 'बा' ने जवाब दिया, "Yes, I know my husband He always mischief"

'बा' ने अपनी टूटी-फूटी अग्रेज़ी के इन दो ही वाक्यो मे बापू के सारे चरित्र का निरूपण कर डाला। इसका मतलब यह था कि वह कभी चुप बैठने वाले नही हैं, उन्हे रोज़ एक न एक शरारत सूझती ही रहती है। जब से दक्षिण अफ्रीका पहुचे, तब से अत तक अपने जीवन के इक्यावन वर्षों मे कभी चैन से नही बैठे।

सारी दुनिया में एक क्षण भी चैन से न बैठने वाला और दूसरों को न बैठने देने वाला बापू के समान कौन है ? बापू को रग-रग को जानने वाली 'बा' को छोड़ ऐसे एक वाक्य में उनके चरित्र का इतना सरल और गम्भीर अर्थों वाला बखान और कौन कर सकता है ?

चोर गुरु

सन् '26 की बात है। साबरमती आश्रम मे एक बार 'बा' के कमरे मे चोरी हो गई। चोर कपडो से भरे दो बक्स चुरा ले गए।

बापू को जब मालूम हुआ तो उन्होने कहा, "लेकिन 'बा' के पास दो सन्दूक कपडे आए कहा से ? और किसलिए ? 'बा' रोज-रोज नई साडिया तो पहनती भी नही।"

'बा' ने कहा, "रामी और मनु की मा तो मर गई हैं, पर कभी-कभार वे मेरे पास आए तो मुझे उनको दो कपडे तो देने चाहिए न ? इसीसे भेंट मे मिली साडिया और खादी मैंने रख छोडी थी।"

बापू ने कहा, "नही, निज भेंट मे मिली कोई चीज केवल उसी हालत मे अपने पास रखी जाए जब उसकी उसी समय जरूरत हो। बाकी सब चीजें तो आश्रम के कार्यालय मे जमा होनी चाहिए।" उसी दिन शाम की प्रार्थना मे बापू ने इसकी चर्चा की और कहा, "हमको ऐसा व्यवहार नही जचता। लडकिया हमारे घर आए तो रहे, खाए, पीए, परन्तु जिन्होंने गरीबी का जीवन बिताने का व्रत लिया है, उन्हे इस प्रकार की भेंट देना ठीक नही।"

इन चोर गुरु से अपरिग्रह की यह नई दीक्षा लेने के बाद 'बा' का अपरिग्रह आदर्श हो गया। जब कभी बापू लम्बी और

कहीं यात्रा करते, तो सारे दल में 'बा' का बिस्तरा सबसे छोटा और एक छोटी-सी अटैची बिल्कुल ज़रूरी चीज़ों की होती। बापू कहा करते," 'बा' हम सबको हराती हैं। इतना कम सामान और इतनी कम ज़रूरत किसी दूसरे की नहीं है। मैं सादगी का इतना आग्रह रखता हूं, परन्तु फिर भी मेरा सामान 'बा' से दुगुना है।"

हरिजन भाई

बापू ने जब अहमदाबाद मे आश्रम की स्थापना की थी, तब आपने अपने साथियो से कह दिया था कि 'यदि कोई लायक अछूत यहां आश्रम मे भरती होना चाहेगा तो मैं उसे अवश्य भरती कर लूगा।'

अत आश्रम की स्थापना के थोडे ही दिन बाद ठक्कर बापा ने आश्रम के नियमों का पालन करने वाले एक अछूत परिवार को आश्रम मे भरती करने की सिफारिश की। बापू तो यह चाहते थे। बस, दूदा भाई, उनकी पत्नी दानी बहिन और दुधमुही बच्ची लक्ष्मी आश्रम मे आ पहुचे।

आश्रम मे बडी खलबली मची। अछूतो को छूने तक को तो सब तयार थे, पर उनको रसोईघर मे और परिवार मे एकमएक करते समय पुराने वैष्णवी हिन्दू सस्कार बाधक थे। प्याले को मुह से लगाकर पानी पीने के बाद उसे माजना ही चाहिए। यदि बिना माजे वह पनियारे पर रख दिया जाए तो 'बा' यह देख भी नही सकती थी। थाली मे कुछ भी परोसते समय परोसने की करछुल या चम्मच भोजन की थाली से तनिक भी छू जाती तो वह करछुल जूठी मान ली जाती थी और उसे अलग मलने के बतनो मे रख देना होता था। बेचारे दूधा भाई और दानी बहिन इस तरह की पूरी खबरदारी रखने की पूरी चेष्टा करने पर भी चूक जाते थे।

बापू की रसोई

आश्रम मे सबकी इकट्ठी रसोई बनती थी। वहा के सब छोटे-बडे काम भी सब लोग मिल-जुलकर स्वय कर लेते थे। वहा का एक यह भी नियम था कि आश्रम मे होने वाली साग-सब्जी ही काम मे लाई जाए। बाहर से साग-सब्जी न मगाई जाए। इस आश्रम की रसोई मे, आश्रम के खेत मे पैदा होने वाले कद्दू का साग रोज़ बनता था। कद्दू का साग क्या बनता था, कद्दू के बडे-बडे टुकडो को उबाल लिया जाता था। उसमे नमक भी नही छोडा जाता था। जिसे इच्छा होती वह अलग से नमक ले सकता था। आश्रम की अनेक बहिनो को कद्दू अनुकूल नही होता था। किसीको बादी होकर चक्कर आने लगते, किसीको खट्टी डकारें आने लगती। बापू सबको पानी चढाते रहते इसलिए, और कुछ सकोचवश भी आश्रमवासिनी बहिनें बापू से इसका जिक्र नही करती थी, परन्तु ये सब बातें 'बा' की दृष्टि से तो नही छिप सकती थी। एक बहिन ने रोज़-रोज़ के इस कद्दू के साग पर एक 'गरबी' तैयार कर ली। 'बा' ने वह सुनी और तुरन्त बापू के पास पहुचकर कहा, "तुम्हारे कद्दू का साग खाकर मणि बहिन को बादी की तकलीफ होती है और चक्कर आते हैं। दुर्गा बहिन को डकारें आती हैं। कद्दू का साग भी कही निरा उबला हुआ बनता है? उसे मेथी से छौंका जाए और उसमे गरम मसाला आदि सब कुछ डाला जाए, तभी वह बाधक नहीं होता।"

बापू सुनकर उस समय तो चुप रहे। दूसरे दिन प्रार्थना के बाद उन्होंने कहा, "हमारे आश्रम में एक नये कवि पैदा हुए है, हमें उनकी कविता सुननी है।" इसके बाद बापू ने उस महिला से वह गरबी गाने का आग्रह किया। महिला ने गरबी गाई। गरबी में आश्रम की रसोई का परिहास था। बापू ने सुनकर कहा, "अच्छी बात है, आपकी फरियाद स्वीकार की जाती है। जिन्हे छौंककर और मसाले डालकर साग खाना हो, वे अपने नाम मुझे लिखा दें।"

'बा' ने कहा, "यो तो आपको कोई नाम नही देगा, यह मामला हम लोग स्वय तय कर लेंगी।"

बापू ने कहा, "अच्छी बात है, ऐसा हो सही। परन्तु देखना, इसमे बच्चो को सम्मिलित मत कर लेना। बच्चे तो बिना मसाले का साग ही पसन्द करते हैं।"

'बा' ने कहा, "इस तरह कहकर बच्चो को चढाओ और भले उन्हे अपने पास ही रखो, ये बच्चे कहा तक तुम्हारे रहेंगे सो मैं जानती हू।"

इसके बाद सब बहिनों ने नाम तय किए और मसाला खाने की आजादी पाई। परन्तु बापू सुख से मसाला नही खाने देते थे। खाने के समय बहिनो की पंक्ति उनके सामने बैठती। बापू खाते-खाते पूछते, "क्यो, बघार कैसा लगा है? साग खूब मसालेदार है न?"

इसका जवाब देती 'बा', "पहले तुम कौन कम थे! हर इतवार को मुझसे बेढमी और पकौडो या पातरे बनवाकर खूब उड़ाते थे। सो तुम्ही थे या और कोई?"

अतिथियों के प्रति

सेवाग्राम मे बापू की झोपडी की ओर जाने से पहले 'बा' की झोपडी पडती थी। 'बा' या तो चबूतरे पर बैठी सूत कातती मिलती या ऐसा ही कोई काम करती नजर आती। किसी नये आने वाले अतिथि को पहले 'बा' के ही दर्शन होते। 'बा' उसे पहचानती हो या न पहचानती हो, फिर भी बडे प्रेम से स्वागत करती। उनका सीधा सरल प्रश्न होता, "कहा से आए हैं? सीधे यही आ रहे हैं या वर्धा होकर आए हैं? भोजन हुआ या नही? गाडी मे बहुत कष्ट तो नही हुआ?" ऐसी छोटी-छोटी बातें पूछती। भोजन न किया होता तो भोजन कराती। आए अतिथियो को बापू के साथ तो जिस काम के लिए आए हो उसकी चर्चा करने का ही काम रहता था, पर उनकी दूसरी सारी कठिनाई 'बा' ही हल किया करती थी। उनसे वे जब-तब पूछती, *"खाना तो अनुकूल होता है न? कोई कष्ट न उठाना भला?* किसी चीज की आवश्यकता हो तो मुझसे कहना।"

मोतीलाल नेहरू जसे शाही दस्तरखान पर खाने वाले लोग *'बा' की बदौलत ही कई-कई दिन आश्रम मे रह जाते।* राजा जी की चाय-कॉफी की चिन्ता 'बा' के सिवा कौन करता? जवाहरलाल जी के लिए खास जायके वाली चाय 'बा' ही बना देती थी।

आश्रम की रीति थी कि भोजन करने के बाद हर एक व्यक्ति अपनी-अपनी थाली माज डाले। एक दिन एक सभ्रान्त महिला आश्रम मे आईं। वे और 'बा' साथ-साथ खाने बैठी। भोजन के

बाद हर कोई अपनी-अपनी थाली उठाकर जाने लगा। उस महिला ने कभी बरतन न मले थे। उनका भोजन हो चुका था, परन्तु वे घबरा रही थी कि क्या करे? इतने मे 'बा' भी खा चुकी। उन्होंने धीरे-से अतिथि महिला की थाली खींच ली। महिला घबराई और लजाई भी। भला कही वे अपनी जूठी थाली 'बा' से मजवा सकती थी? परन्तु 'बा' ने प्रेम से कहा, "नही बहिन, इसमे लजाने की क्या बात है? तुमने कभी थाली माजी नही, तुमसे नही बनेगा। मुझे तो रोज की आदत है, मेरे लिए एक थाली भारी नही।"

हरिलाल भाई

हरिलाल भाई बापू के सबसे बडे बेटे थे। उन्नीस वर्ष की आयु मे जब बापू बैरिस्टर बनने विलायत गए थे, तो हरिलाल को 'बा' की गोद मे छोड गए थे। बडे होने पर हरिलाल भाई ने बापू से अच्छा खासा विद्रोह ठाना। इसका कारण हरिलाल भाई यह बताते थे कि उन्होने जान-बूझकर उन्ह और उनके भाइयो को शिक्षा के अवसरो से वचित रखा। बापू ने अपने जीवन मे जो क्रातिकारी उलट-पलट किए वे भी हरिलाल भाई को अच्छे नहीं लगे। अफ्रीका के सत्याग्रह की लडाई मे हरिलाल भाई ने अच्छा हिस्सा लिया था और तीन बार जेल भी गए थे, परन्तु पीछे उन्होने बापू का परित्याग कर दिया और भारत चले आए। यहा पढाई आरम्भ की। परन्तु पढाई पूरी न हो सकी, मैट्रिक मे फेल होकर उन्होंने पढना बन्द कर दिया और नातेदारो की सलाह से विवाह कर लिया। कुछ दिन बाद उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई, इसके बाद वे गैर रास्ते चल पडे, शराब पीने लगे। बापू और 'बा' ने उन्हे ठीक रास्ते पर लाने की बहुत चेष्टा की, पर परिणाम कुछ न हुआ। वे मुसलमान हो गए, फिर लौटकर आर्य समाजी बने। उनके बाल बच्चो को 'बा' ने अपने पास रख लिया। यद्यपि हरिलाल भाई 'बा' और बापू को छोडकर चले गए थे, परन्तु 'बा' के लिए उनके मन मे बहुत मान और प्रेम रहा। वे बहुधा कहा करते कि राजरानी बनने के लिए जन्मी हुई 'बा' से बापू नाहक इतनी तकलीफ उठवाते हैं। 'बा' से मिलने वे कभी-कभी आश्रम मे

जाते रहते थे। परन्तु अन्त मे जब उनकी हालत बहुत खराब हो गई तो उन्हे आश्रम मे आने मे हिचक होने लगी। एक बार बहुत ही बुरी, बेहाल हालत मे उनका 'बा' और बापू का अकस्मात् साक्षात हो गया।

बापू और 'बा' ट्रेन की यात्रा कर रहे थे। जब जबलपुर मेल कटनी स्टेशन पर पहुची तो वहा दूसरे स्टेशनो से बिल्कुल निराला नया जयनाद सुनाई दिया, 'माता कस्तूरबा की जय!' इससे 'बा' को थोडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने खिडकी से मुह निकालकर बाहर देखा, तो सामने हरिलाल भाई खडे थे।

उनका स्वस्थ शरीर बिल्कुल जर्जर हो गया था, अगले दात सब गिर गए थे, कपडे बिल्कुल फटे हुए थे। खिडकी के पास आकर उन्होने अपनी जेब से झटपट एक मोसम्मी निकाली और कहा, " 'बा' यह तुम्हारे लिए लाया हू।"

'बा' के होठ अभी हिल ही रहे थे कि बापू खिडकी के पास आ पहुचे और बोले, "मेरे लिए कुछ नही लाया?"

हरिलाल भाई ने कहा, "नही, यह तो 'बा' के लिए ही लाया हू। आपसे तो केवल यही कहना है कि 'बा' के प्रताप से ही आप इतने बडे बने हैं।"

"इसमे तो कोई सन्देह नही, परन्तु क्या तू अब हमारे साथ चलेगा?"

"नही, मैं तो 'बा' से मिलने आया हू।"

बापू वापस अपनी जगह पर आ बैठे। मां-बेटे की बात फिर आगे चली।

"लो 'बा' यह मोसम्मी।"

"कहा से लाया?"

"कही से भी लाया हू, तुम्हारे लिए लाया हू। भीख मागकर लाया हू।"

'बा' ने मोसम्मी हाथ मे ले ली। परन्तु हरिलाल भाई को इससे सन्तोष नही हुआ। उन्होंने कहा, " 'बा' यह मोसम्मी आप ही को खानी है, आप न खाए तो मुझे वापस दे दें।"

"रह-रह, यह मोसम्मी मै ही खाऊगी।" कुछ देर वे पुत्र को एकटक निरखती रही, फिर बोली, "तू अपना हाल तो देख, और तनिक सोच तो सही कि तू किसका बेटा है! चल, हमारे साथ चल।"

इस पर हरिलाल भाई ने भीगे स्वर मे कहा, "इसकी तो बात ही न करो 'बा', मैं अब इस हालत से उबर ही नही सकता।"

'बा' की आखें छलछला आईं। गाड ने सीटी दी, ट्रेन चली। चलते-चलते हरिलाल भाई ने फिर कहा, " 'बा', मोसम्मी तो तुम्ही खाना भला?"

जब गाडी आगे बढ गई तब 'बा' को अचानक ध्यान आया कि उन्होने पुत्र को तो कुछ दिया ही नही। अरे, बेचारे को फल-वल कुछ नही दिए, भूखो मरता होगा। देखू, अब भी कुछ दे सकू तो—

उन्होंने जल्दी-जल्दी डलिया मे से फल निकालकर बाहर देखा तो ट्रेन प्लेटफाम पार कर चुकी थी।

'बा' की तत्परता

'बा' सदैव प्रात काल चार बजे प्रार्थना के समय उठती। प्रार्थना के बाद बापू की आध-पौन घण्टा सो जाने की आदत थी, परन्तु 'बा' उठने के बाद फिर नही सोती थी। वे बापू के फिर से जागने के पहले उनके लिए गर्म पानी और शहद या जो कुछ भी वे प्रात लेने वाले हो, तैयार करने-कराने मे लग जाती थी। बापू के ऐसे निजी कार्यों के करने की बहुतो की इच्छा रहती और कभी-कभी आपस मे इसके लिए होडा-होडी भी होती। 'बा' ऐसे व्यक्तियो मे काम बाट देती थी, परन्तु काम चाहे किसी के भी सुपुर्द किया गया हो, 'बा' सामने खडी रहकर देखती रहती कि सब ठीक हो रहा है या नही। चीज अच्छी तरह बनो है, यह 'बा' स्वय देखकर बापू के पास ले जाती थी, और जब तक वे उसे खा-पी न लें, स्वय उनके पास बैठी रहती थी। फिर यह भी देखती कि बर्तन ठीक तौर पर साफ करके अपनी जगह रख दिए गए हैं या नही। यदि बर्तनो की सफाई मे तनिक भी दोष दीख पडा तो 'बा' स्वय उसे फिर से अपने हाथो से साफ करती थी।

प्राय सात बजे प्रात बापू घूमने निकलते थे। उस समय 'बा' अपने स्नान आदि नित्यकार्यों से निपटकर पूजापाठ मे बैठ जाती। घी के दिए और अगरबत्ती की धूप के साथ लगभग एक घण्टा गीता, तुलसी रामायण का पाठ करती। इसके बाद वे रसोईघर में पहुच जाती। वहा कहा क्या हो रहा है—उसे वे तुरन्त एक ही निगाह मे देख लेती। वे बडी स्पष्ट वक्ता थी

इसलिए जिसे डाट-फटकार देना होता, दे डालतीं। वे सब कुछ ठीक-ठीक देखना चाहती थी, तनिक भी कोई वस्तु बेकरीने देखतीं तो स्वय हाथ से ठीक-ठाक कर देती थी।

बापू का भोजन वे स्वय बनाती या अपनी कडी निगरानी मे बनवाती। उनके लिए बनाई खस्ता रोटिया गोल डब्बे मे ठीक तौर पर जमाकर रखी जाती हैं या नही, सभी एक आकार की हैं या नही, कोई मोटी-पतली तो नही है—इसकी 'बा' खूब छानबीन करती थी। उनमे नमक-सोडा ठीक डाला गया है, यह भी 'बा' ठीक तौर पर जाच लेती थी। जिस दिन ये खस्ता रोटिया 'खाखरे' 'बा' अपने हाथ से बनाती तो बापू को पता चल जाता। व हसकर कहते, "आज तो 'बा' ने बनाए खाखरे हैं।"

भोजन की घण्टी वजते ही सब भोजनालय मे जा पहुचते, तब बापू और खास मेहमानो को परोसकर 'बा' बापू के पास खाने बैठ जाती। उस वक्त भी एक निगाह उनकी बापू की ओर रहती। बापू के पास एक मक्खी भी आती देखती तो उनका बाया हाथ पखे पर जाता। भोजन के बाद 'बा' बापू के साथ भोजनालय से उनके कमरे मे आती और जब बापू अखबार पढने लगते तो वे उनके तलवो पर घी की मालिश करती। जब बापू की आख लग जाती तो 'बा' उठकर अपने कमरे मे जाती और तनिक विश्राम करती, परन्तु पन्द्रह-बीस मिनट बाद ही उठकर मुह धोकर स्वय अखबार पढने बैठ जाती। 'वन्दे मातरम' और 'गुजरात समाचार' तो बिना नागा पढा करती। 'हरिजन-बन्धु' प्रति सप्ताह उनके पास आता। गीता के श्लोकों का शुद्ध पाठ करने की चेष्टा वे सदा करती थी। अखबार से फुसत पाकर 'बा' प्रतिदिन कातने बैठती, प्रतिदिन 400 से 500 तार बराबर कातती। कताई उनकी तभी रुकती, जब वे रोगशय्या पर होती। आश्रम भर मे 'बा' सबसे अधिक सूत कातनेवालो मे थी। चार बजते-बजते 'बा'

फिर रसोई मे जा पहुचती, वहा बापू का खाना तैयार कराती। पाच बजे बापू खाने बैठते तब उनके पास बैठती। वे कई साल से एक वक्त खाती थी। रात को केवल एक प्याला काफी पी लेती थी। परन्तु मृत्यु से चार साल पहले से उन्होने वह भी छोड दिया था, दूध मे तुलसी और काली मिच डालकर उसे थोडा उबालती और पी लेती थी। सन्ध्याकाल जब बापू घूमने जाते 'बा' आश्रम में कोई बीमार रहा हो तो उसके पास बैठती, फिर दूसरी बहिनो के साथ वे भी घूमने जाती और आश्रम से कुछ दूर जाने पर जब बापू वापस आते दीखते तो वे भी उनके साथ हो जाती।

घूमकर आने के बाद साय प्राथना होती। उसमे रामायण गाई जाती। तब 'बा' उसमे सम्मिलित होती और प्रार्थना के बाद बापू के सोने की तैयारी मे लग जाती। सोने से पहले बापू के सिर मे तेल मलने का काम लगभग अन्त तक वे नियमित रूप से स्वयं करती रही।

नौ अगस्त

प्रात काल चार बजे नियमित समय पर बापू जब प्रायना के आसन पर बैठे तो महादेव भाई ने कहा, "रात एक बजे तक टेलीफोन आते रहे हैं कि आपको पकडने आ रहे है।" बापू ने कहा, "मुझे कोई नही पकडेगा, सरकार इतनी मूर्ख नही है कि मेरे जैसे मित्र को पकडे।" और वे प्रार्थना मे लीन हो गए। प्रार्थना के बाद बापू विश्राम करते थे। साढे पाच बजे विश्राम कर ही रहे थे कि महादेव भाई दौडे हुए आए और बोले, "बापू, पकडने आए हैं।"

बापू झट तैयारी में जुट गए।

पुलिस अफसर ने कुल आध घण्टे का समय दिया था। सबसे मिलकर यह प्रार्थना की और यह गीत गाया 'हरि ने भजता हजी कोई नो लाज जती नथ जाणी रे।'

छ बजते-बजते बापू, महादेव भाई और मीरा बहिन पुलिस की मोटर में बैठ गए। 'बा' भी चलना चाहती थी। बापू ने कहा, "तू न रह सके तो भले ही चल, परन्तु मैं चाहता तो यह हू कि तू मेरे साथ आने के बदले मेरा काम कर।"

'बा' के लिए सकेत काफी था। 'बा' रुक गईं। उसी शाम को बापू शिवाजी पार्क की एक आम सभा मे भाषण देने वाले थे। अब 'बा' ने घोषणा की कि वे भाषण देंगी।

बापू की गिरफ्तारी से सारे भारत में बिजली की लहर दौड गई थी और कार्यकर्ताओ के झुड के झुड 'बिडला हाउस' में आ

रहे थे। 'बा' का दरबार लगा था, वे बीमार थीं और थककर चूर-चूर हो गई थी, परन्तु अपने हिस्से के कर्तव्य-पालन मे जुटी थी।

पौने पाच बजे शाम को वे सभा के लिए चली। द्वार पर एक बडे डीलडौल वाला पुलिस अफसर मिला। वह हाथ जोडे हुए 'बा' के सामने आया और अदब से झुककर 'बा' से कहा, "आप घर ही रहेंगी या सभा मे जाएगी ? आपका क्या हुक्म है ?"

'बा' ने मीठी मुस्कान के साथ उत्तर दिया, "मैं सभा मे ही तो जा रही हू।"

अफसर क्षण-भर रुका। फिर बोला, "तो फिर आप इस मोटर मे बैठ जाए, मैं आपको बापू के पास ले जाऊगा।"

'बा' ने तुरन्त तैयारी कर ली। सुशीला बहिन के बिना 'बा' का काम नही चल सकता था, अत यह कह दिया कि 'बा' के बाद सुशीला भाषण करेंगी। बस, सुशीला का साथ बन गया। 'बा' की यह अन्तिम यात्रा थी।

मोटर जब दोनो को लेकर आर्थर रोड जेल पर पहुची तो 'बा' ने खिन्न स्वर से कहा, "इस बार ये जिन्दा नही निकलने देंगे। बहिन यह सरकार तो पापी है।"

सुशीला ने कहा, "हा 'बा', पापी तो है ही। इसीलिए इसका पाप ही इसे खा जाएगा और बापू फतह पाकर बाहर निकलेंगे।"

जेल मे उन्हे लकडी के ही पटरे सोने के लिए मिले। 'बा' को थोडा ज्वर था और उन्हे रात-भर दस्त आते रहे थे। प्रात काल जब डाक्टर आया तो सुशीला बहिन ने कहा, "'बा' के लिए खास खुराक मिलनी चाहिए।"

"तो वह आप खरीद सकती हैं।"

"परन्तु हमारे पास पैसे नही हैं आप हमारे मित्रो को फोन कर दें जिससे वे रुपये भेज दें।"

"फोन नही कर सकता। सरकार का हुक्म है कि बाहर की दुनिया से आप लागो का सम्पक नही रहना चाहिए।"

"तो आप अस्पताल से प्रबन्ध कीजिए या अपनी पाकेट से, आपका कज चुका दिया जाएगा।"

डाक्टर कुछ हुज्जत के बाद चला गया। शाम को दो सेब आए। पर उनका रस निकालने का कोई प्रबन्ध न था। तमाम रात और दिन-भर दस्त आने से 'बा' बहुत कमजोर हो गई थी। डाक्टर ने दवा की कोई व्यवस्था नही की थी। जिस कमरे मे उन्हे रखा गया था, उसकी हवा इतनी गन्दी थी कि वहा बैठने से सिर मे दर्द होने लगा। हवाई हमले से बचने के लिए सब खिडकियो का तीन-चौथाई भाग ईंटो से चुन दिया गया था। इस कारण भीतर हवा नही आ सकती थी। पाखाने की नाली टूटी हुई थी, उसमे से सडी दुगन्ध आ रही थी। फश मे बहुत नमी थी। बाहर के बराडे भी ऊची-ऊची दीवारो से बन्द कर दिए गए थे।

दूसरे दिन नौ बजे मेट्रन ने आकर कहा, "ग्यारह बजे आप लोगो को यहा से ले जाया जाएगा।" रात-भर दस्त के कारण जागते रहकर इस समय 'बा' को कुछ झपकी लग गई थी। सुशीला बहिन ने जल्दी-जल्दी अपना सामान बाधा, दस बजे 'बा' को जगाया और प्रार्थना की। 'रामधुन' चल ही रही थी कि जेलर आ गया। एक कैदी महिला को जब मालूम हुआ कि पैसा न होने से 'बा' को फल नही मिल सके, तो उसने अपना पर्स सुशीला बहिन को थमा दिया। उसमे से पाच रुपये लेकर सुशीला बहिन ने अपनी एक रगीन साडी उस महिला को दे दी।

स्टेशन पर आकर इन्हे वेटिंग रूम मे बैठाया गया। स्टेशन पर शोरगुल, भीड-भाड वैसी ही थी। 'बा' चुपचाप एक आराम कुर्सी पर पडी देखती रही, फिर एकाएक बोल उठी, "देख

सुशीला, यह दुनिया तो ऐसे चल रही है जैसे कुछ हुआ ही न हो। बापू को स्वराज्य कैसे मिलेगा ?"

सुशीला ने कहा, " 'बा' ईश्वर बापू की मदद पर हैं न !"

उन्हे पहले दर्जे के एक छोटे-से डिब्बे मे बैठाया गया और गाडी पूना की ओर रवाना हुई। सुबह सात बजे एक छोटे-से स्टेशन पर गाडी खडी करके उन्हें उतारा गया और मोटर द्वारा आगा खा महल मे पहुचा दिया गया।

पहरेदारो ने बडा फाटक खोला। कुछ दूर जाने पर तार का एक दूसरा दरवाज़ा खुला, मोटर पोर्च मे जा खडी हुई। 'बा' सुशीला बहिन का सहारा लेकर धीरे-धीरे सीढिया चढी। बरामदे मे कुछ कैदी झाड़ू लगा रहे थे। 'बा' ने उनसे पूछा, "बापू का कमरा कौन-सा है ?"

किसी ने जवाब दिया, "आखिर का।"

'बा' सुशीला बहिन का सहारा लेकर धीरे-धीरे चलती हुई बापू के कमरे मे पहुची। बापू एक ऊची गद्दी पर बैठे हाथ मे कुछ कागज़ लिए ध्यानपूर्वक कोई लेख सुधार रहे थे। कुछ बात-चीत भी हो रही थी। महादेव भाई कन्धे के पीछे खडे होकर उन कागजो को देख रहे थे। महादेव भाई 'बा' को देखते ही खुश हो गए। परन्तु बापू की त्योरिया चढ गई, उन्हे सन्देह हुआ—कही 'बा' मन की कमज़ोरी से मेरा वियोग असह्य लगने से तो यहा मेरे पीछे-पीछे नही चली आई ? वे अपना कर्त्तव्य तो नही भूल गईं ? उन्होने तीखे स्वर से पूछा, "तूने यहा आने की इच्छा प्रकट की थी तो उन्होने तुझे पकडा ?"

'बा' चुप। परन्तु सुशीला बहिन ने कहा, "नही, बापू ! मैं और 'बा' गिरफ्तार होकर आई हैं।" 'बा' ने भी बापू का अभिप्राय समझकर कहा, "नही-नही, मैंने कोई माग नही की, उन्होने हमे पकडा।"

यह उत्तर सुनकर बापू शान्त हुए।

जोड़ी बिछुड़ी

कुछ दिन पहले से ही 'बा' को ऐसा भास होने लगा था कि उनकी मौत अब निकट है। जब आगाखां महल में महादेव देसाई का एकाएक स्वर्गवास हो गया तो वे बार-बार यह कहने लगीं कि मुझे जाना था, फिर महादेव क्यों चला गया? बाद में जब बापू ने आगाखां महल में उपवास किया—तो जो मिलने वाले वहां उस समय बापू से मिलने आते और बापू के सम्बन्ध में चिन्ता प्रकट करते, उनसे 'बा' कहतीं, "मैं बापू से पहले जाऊंगी, बापू ज़रूर उठ बैठेंगे। लेकिन मैं यहां से जीती बाहर नहीं निकलूंगी। यह तो महादेव का मन्दिर है, जिस रास्ते महादेव गए, उसी रास्ते मैं भी जाऊंगी।"

फरवरी आते-आते उनकी हालत बिगड़ गई। चिकित्सा के सम्भव साधन, जो उस अवस्था में प्रस्तुत हो सकते थे, प्रस्तुत किए गए। परन्तु परिणाम निराशापूर्ण ही रहा। उन्नीस फरवरी को न्यूमोनिया हो गया, इसलिए कलकत्ता से हवाई जहाज से सत्रह फरवरी को हरिलाल भाई को एक बार 'बा' से मिलने की आज्ञा दी गई। बीस फरवरी को हालत निराशाजनक हो गई। यही दशा इक्कीस फरवरी को रही। उसी दिन शाम को देवदास मनु और सन्तोष आ पहुंचे। बाईस फरवरी को कलकत्ते से हवाई जहाज द्वारा पेंसिलीन आ पहुंची। 'बा' अर्द्धमूर्छित पड़ी थीं। बापू ने पेंसिलीन देने की मनाही कर दी। बापू अधिक समय अब 'बा' के निकट ही बैठे रहते थे। अब 'बा' को जल निगलने में भी

कष्ट होता था।

अन्त में 'बा' की आखें एकदम खुली और उन्होने बापू को बुलाया। जयसुखलाल भाई पास आए, उन्होंने बापू से कहा, "'बा' बुलाती हैं।" बापू हसते-हसते आए और बोले, "क्यो 'बा' शायद तू सोचेगी कि सब रिश्तेदार आ गए, इसलिए मैंने तुझे छोड दिया। ले, यह मैं आया।" बापू ने 'बा' को गोद मे ले लिया। बापू की ओर देखकर 'बा' कहने लगी, "मैं अब जाती हू ! हमने बहुत सुख भोगे, दु ख भी भोगे। मेरे बाद रोना मत, मेरे मरने पर तो मिठाई खानी चाहिए।" यो कहते-कहते 'बा' के प्राण बापू की गोद मे ही निकल गए। बापू देख रहे थे। ज्यों ही प्राण निकले, बापू ने अपना सिर 'बा' की देह पर डाल दिया और उनकी आखो से आसुओ की धार बह चली। देवदास भाई 'बा' के पैर पकडकर 'बा-बा' पुकारने लगे। जयसुखलाल भाई ने बापू का चश्मा उतार लिया। बापू फौरन सभल गए। देवदास भाई को अपनी गोद मे लेकर स्वस्थ किया। 'बा' के निकट 'रामधुन' शुरू हुई। फिर बापू, मनु, प्रभावती और सुशीला ने मिलकर 'बा' की मृत देह को स्नान कराया, शरीर पोछा, बापू के काते सूत की साडी मे 'बा' को लपेटा। माथे पर कुकुम लगाया, हाथ में और गले मे बापू का काता हुआ सूत पहनाया। जमीन लीपकर उसमे चौक पूरा और 'बा' को वहा सुलाया। 22 फरवरी को सायकाल ठीक 6 बजकर 35 मिनट पर उनकी आत्मा मुक्त हुई।

जीवन खुली पुस्तक

बापू का जीवन एक खुली पुस्तक था। उसमे छिपाने योग्य कोई बात ही न थी, एकान्त का उनके जीवन मे कोई अर्थ ही न था। वह कोई भी बात, चाहे कितनी गुप्त क्यो न हो, बता देते थे। जब बात करते, खुले दिल से।

बापू ने कभी किसीका अविश्वास नही किया। बहुतो ने उन्हे बहुत बार धोखा दिया, फिर भी उन्होने अपने विश्वास को नही हटाया। उनका यह निश्चय था कि हर व्यक्ति मे गुण-दोष दोनों मौजूद है, सुधरने का अवसर हर एक को देना चाहिए। वह आज नही तो कल अपनी भूल स्वीकार कर ही लेगा। वे दण्ड देने के पक्ष मे नही थे। उनका कथन था कि सच्चा दण्ड पश्चात्ताप है।

बापू की अंत शक्ति

बापू की अंत शक्ति अजेय थी। उनका दुर्बल शरीर विद्युत् शक्ति का पुंज था। उसीकी सहायता से वे विरोधी को अपनी ओर खींच लेते थे। एक बार जो उनके सम्पर्क मे आया, सदा के लिए उनका हो गया। उनकी वाणी कोमल, बुद्धि विशाल और तेजपूर्ण, ज्ञान अपरिमित और अनुभव अद्वितीय था। यह एक आश्चर्यजनक बात थी कि उनकी मानसिक शक्तिया जीवन के अंतिम दिन तक बढती ही गई। विकट से विकट समस्या को सुलझाना और एक सर्वथा मौलिक मार्ग खोज निकालना उनके लिए साधारण बात थी। कठिनाइयो का सामना करने मे उन्हे आनन्द आता था।

परिजनों पर ममता

बापू अपने परिजनो पर बडी ममता रखते थे। उनको अपने पास रहने वाले प्रत्येक के खाने, सोने और आराम का पूरा ख्याल रहता था। यदि कोई बीमार हो जाता तो वह अपनी बीमारी भूलकर बापू की असुविधा का अधिक विचार करने लगता, क्योंकि बीमार होने का अर्थ था— बापू के बढे हुए कामो मे एक और की वृद्धि। उन्हे बीमार की पूरी खबर मिलनी ही चाहिए थी। उसको क्या दवा मिली, क्या खाना मिला, क्या हालत रही, ये सब बातें उन तक पहुचनी चाहिए, वरना उन्हें सन्तोष न होता। बीमार को वे एक बार देखने अवश्य जाते थे। जहा किसी मिलनेवाले की बीमारी की बात सुनी कि उसके घर देखने पहुच गए। रोगी के लिए बिना समय निकाले वे नही रहते थे।

धन-सम्पत्ति

उनके पास करोडो रुपये खर्च करने को दान में आए। बहुत लोग गुप्तदान मे चुपचाप बडी-बडी रकमें उन्हे दे जाते थे, परन्तु उन्होंने कभी एक कौडी भी इधर से उधर नही होने दी। उनके पास पाई-पाई का हिसाब रहता था। आए हुए पैसे को वे खूब सोच-विचार कर खर्च करते थे। धनाभाव से तो कभी उनका कोई काम रुका ही नही। एक बार उनके एक भक्त ने उनसे पूछा कि वे सट्टे वालो से दान क्यो लेते हैं, इस पर उन्होंने कहा, "सट्टे और शराब मे तो मैं मुकाबला ही नही कर पाता हू। शराब के व्यापारियो से मैंने काफी रुपया लिया है। किसका पैसा लू और किसका छोड दू ?"

शारीरिक चुस्ती

78 वर्ष की वृद्धावस्था मे भी उनकी शारीरिक स्फूर्ति बहुत अद्‌भुत थी। सदा तनकर बैठते थे। कमर झुकाकर बैठना वे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मानते थे। जहा किसी को कमर झुकाकर बैठे देखा, झट टोका। सीधे बैठने के लिए वे पीठ के पीछे काठ का एक तख्ता रख लिया करते थे, ताकि कमर न झुकी रहे। सर्दी के दिनो मे उनका शरीर तथा पैर बहुत ठण्डे हो जाया करते थे, इसलिए सोते समय खून का दौरा बढाने के लिए कुछ मिनट थोडी कसरत करके वे शरीर को गर्म कर लिया करते थे। साय-प्रात नित्य आधे घण्टे घूमना उनका नित्यकम था। यथासम्भव इसमे बाधा न आती थी। यदि काम मे लगे रहने से रात के नौ-दस बज जाए तो वे छुट्टी मिलते ही घूमने निकल पडते थे, कभी-कभी इतनी तेजी से चलते थे कि नवयुवक भी उनके साथ चलते हुए हाफ जाते थे।

प्राकृतिक चिकित्सा पर विश्वास

प्राकृतिक चिकित्सा पर बापू को बडा विश्वास था। हवा, पानी, मिट्टी और सूर्य-प्रकाश —ये चार उनकी औषध थी। मिट्टी को तो वे मा के दूध के समान मानते थे। पेट पर मिट्टी बाधना उनका नित्य का नियम था। आवश्यकता होने पर वे माथे पर भी मिट्टी बाधते थे। एक बार उनकी ठोडी पर एक मस्सा निकल आया तो उसपर भी मिट्टी बाध दी गई। एक बार खाना खाने के समय एक चील ने झपट्टा मारा, इससे उनके अगूठे से खून निकल आया, उस पर भी मिट्टी बाध दी गई।

मिट्टी के समान ही वे पानी को भी उपयोगी मानते थे। एक बार मोटर के दरवाज़े मे उनकी दो अगुलिया आ गईं। चोट इतनी कडी थी कि कुछ क्षणो को वे बेहोश हो गए। उन्होने तुरन्त पानी मे अगुलिया डाल दी, बहुत कहने पर भी टिंचर नही लगवाया।

थोडी देर बाद पानी से अगुली निकालकर वे काम करने लगे।

उन्हें शीतकाल मे सूर्य की खुली धूप में बैठना बहुत प्रिय था। जाडो मे वे दिन-भर धूप मे पडे रहते थे। उन्मुक्त वायु को वे बहुत महत्त्व देते थे। वे सदा खुली जगह में सोते—चाहे कितनी ही कडाके की सर्दी क्यो न हो। मालिश के समय दो-दो हीटर लगाने पडते थे, पर खिडकिया अवश्य खुली रहती थीं। कडाके की सर्दी

मे वे खुली टागो, नगे पैर, एक गर्म चादर ओढकर घूमते थे। खुले आकाश के नीचे सोना उन्हे बहुत प्रिय था। यद्यपि डाक्टरों ने रक्त के दबाव के कारण उन्हे सर्दी और ओस मे सोना मना कर दिया था।

प्रार्थना

प्रार्थना मे बापू को अटल विश्वास था। कहना चाहिए, प्रार्थना उनके जीवन का एक अविभाज्य अग था। प्रार्थना के नियत समय मे तनिक-सी भी देर वे सहन नही कर सकते थे। उनका कहना था कि वे बिना भोजन तो हफ्तो रह सकते हैं, हवा के बिना भी कुछ क्षण टिक सकते है, पर राम के बिना वे क्षण-भर भी नही जी सकते। उनका राम सर्वव्यापी था, वह जड-चेतन सभी मे व्याप्त था। उनका प्रत्येक काम राम के लिए था। प्राथना के समय मे वे सबको अतर्मुख बनने को कहते और अर्थ सहित उसका मनन करने पर ज़ोर देते। उनका कहना था, राम तुम्हारे कठ से उतरकर हृदय मे बैठ जाना चाहिए, उन्हे यह दोहा बहुत प्रिय था

माला तो कर मे फिरे, जीभ फिरे मुख माही।
मनुवा तो चहुदिशि फिरे, यह तो सुमिरन नाहिं॥

प्रम और दया से उनका हृदय लबालब था, पर वे कठोर भी कम न थे। पर दु ख तो वे देख न सकते थे। पेलोभ, अहकार से वे परे थे। दुबले-पतले थे, पर अशक्त नही। एक क्षण भी खाली न बैठते थे, न किसीको बैठने देते थे। नीद पर उनका पूरा काबू था। रेल मे चाहे कितना ही शोरगुल क्यो न हो, वे निर्विघ्न सो जाते थे। और जितनी देर मे उठने को कहते, उतनी ही देर मे उठ खडे होते थे। बच्चो से विनोद का तो वे कोई अवसर ही न

जाने देते थे। आभा और मनु के कन्धो पर पूरा भार देकर वे कभी-कभी ऊपर लटक जाते थे और यह लडकिया उन्हे इसी हालत मे ले चलती थी। तब बापू का यह बाल-भाव देख उपस्थित जन हसते-हसते लहालोट हो जाते थे। वे सदा निर्भय और असदिग्ध रहे।

जीवन एक खेल

बापू की दृष्टि मे जीवन एक खेल था। वे सदा हसते रहते थे। उनका वासस्थान सदा हास्य से मुखरित रहता था। वे बडे विनोदी थे, विनोद ही मे वे बहुधा कभी-कभी शिक्षा दे देते थे। उनका मस्तिष्क सदैव ताज़ा रहता था। शरीर थक जाने पर भी दिमाग नही थकता था। 79 वर्ष की आयु मे उनकी स्मरण शक्ति और मेधा अत्यन्त तीव्र थी। अपने शरीर, मन और वचन पर उनका भरपूर नियन्त्रण था। वे बडे भारी सयमी थे। स्त्री-पुरुष का भेद-भाव उनकी दृष्टि में था ही नही।

उपवास

बापू ने पन्द्रह बार उपवास किया। तीन बार 21-21 दिन तक निराहार रहे। उनके निकटवर्ती जन ही यह जानते हैं कि इन उपवास के दिनों में वे कितनी यातना सहते थे। यह यातना दो प्रकार की होती थी। एक तो उपवास के कारण उत्पन्न उनके अशक्त और रुग्ण शरीर पर जो भयानक प्रतिक्रिया होती थी वह, और दूसरी, जिस मनोव्यथा के कारण वे उपवास करते थे उससे उत्पन्न मानसिक पीड़ा। प्राय तीसरे ही दिन उन्हें मतली प्रारम्भ हो जाती थी, जिसके कारण वे पानी भी नहीं पी पाते थे। बिना पानी पिए पेशाब में कमी आ जाती थी और गुर्दों में खराबी उत्पन्न होने लगती थी। बहुत बार तो उनकी देखरेख करने वाले डाक्टर, जो भारत के दिग्गज चिकित्साशास्त्री होते थे, घबराकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते थे। परंतु बापू कठिन से कठिन समय में भी स्थिर रहते और प्राय यह कहते कि जब तक प्रभु को मुझसे काम लेना है, मेरा बाल भी बांका नहीं हो सकता है। 1924 के उपवास में एक दिन डाक्टर अंसारी बहुत घबरा गए, क्योंकि उनके गुर्दों की बहुत खराब हालत हो गई थी। उन्होंने बापू से बहुत आग्रह किया कि वे थोड़ा सा संतरे का रस ले लें। बापू ने धीमे स्वर से कहा, "सुबह तक और ठहरो।" सुबह जब डाक्टर ने मूत्र की परीक्षा की, तो यह देखकर हैरान हो गए कि वह नामल है।

आगाखा महल मे भी ऐसा ही हुआ। डा० विधानचन्द्र राय घबरा उठे, परन्तु वहा भी हालत स्वय स्वाभाविक हो गई। यह देख डा विधानचन्द्र राय ने कहा था कि हमारी हिम्मत वहा नहीं पहुची है, जहा बापू पहुच चुके है।

जेल और पत्र

बापू के समान कामकाजी आदमी दुनिया मे बहुत कम मिलेंगे। उन्होने जितने लेख और पत्र अपने साठ वर्ष के सामाजिक जीवन मे लिखे, उतने शायद ही किसी दूसरे ने लिखे हो। इन लेखो और पत्रो को यदि इकट्ठा किया जाय तो दस हज़ार पृष्ठ का ग्रन्थ तैयार हो जाय। उनको डाक थैला भर आती थी। दुनिया का ऐसा कोई देश न था, जहा से उनका पत्र व्यवहार न रहता हो। यह आश्चयजनक बात है कि वे प्रत्येक पत्र का उत्तर अविलम्ब अपने हाथ ही से अधिकाश मे लिखकर देते थे। डाक के समय के वे बडे पाबन्द थे। यात्रा मे जहा पहुचते, वे सबसे प्रथम डाक के सम्बन्ध मे व्यवस्था करते थे और इस बात का ध्यान रखते कि डाक समय पर आ गई या नही।

जिस दिन 'हरिजन' मे लेख भेजे जाते, उस दिन की व्यस्तता देखने योग्य होती। कितना मैटर तैयार हो गया, इसकी सूचना उन्हे मिलती रहती। जो कमी रहती—उसे वे स्वय पूरा करते। यही कारण है कि उन्हाने अत्यन्त व्यस्त लम्बी-लम्बी यात्राए की, परन्तु उनका साप्ताहिक कभी देर से नही निकला। मैटर भेजने के दिन भी कभी रात-रात भर टाइप की मशीन चलती रहती। दूसरी ओर अग्रेज़ी लेखो का हिन्दी, उर्दू और गुजराती मे अनुवाद होता रहता। कही टिकट लगाकर लिफाफे तैयार होते, कही लेखो की सूची बनाई जाती। बार-बार पूछने, सब कुछ तैयार हो गया

या कुछ कमी है ? डाक लेकर कौन जाएगा आदि-आदि। कभी-कभी तार से या खास आदमी के द्वारा लेख भेजे जाते थे। उनके लेख अंग्रेजी, गुजराती और हिन्दी मे निकलते थे। पहले 'यग इन्डिया' और 'नवजीवन' निकलते थे, बाद मे उनकी जगह 'हरिजन', 'हरिजन-बन्धु' और 'हरिजन सेवक' निकलने लगे।

इन पत्रो के द्वारा देश मे नये भाव, नई भाषा और नई विचारशैली को बापू ने जन्म दिया। उनके पत्रो की ग्राहक-सख्या साठ हजार तक पहुच गई थी। इन लेखो को देश-विदेश के विविध पत्र उद्धत करते रहते थे। सन् '42 के 'हरिजन' के लेखो ने कुछ ही दिनो मे देश मे क्राति की आग भडका दी और 'भारत छोडो' आन्दोलन खडा कर दिया।

बापू की लेखन शैली ओजपूर्ण, सादी और स्पष्ट होती थी। अच्छे-अच्छे अग्रेज भी उनकी अग्रेजी के कायल थे।

बापू अपने लेख को एक बार लिखकर शायद ही उसमे काट-छाट करते थे। उनके विचार इतने स्पष्ट और दृढ होते थे कि उनमें अदल-बदल की कुछ भी गुजाइश नही होती थी। उनका कहना था कि लेख लिखते समय वे ऐसा अनुभव करते थे कि कोई दूसरी शक्ति उनसे लिखवा रही है। फिर भी वह लेख हो या पत्र, जब तक एक बार दुबारा पढ नही लेते थे, उसे जाने नही देते थे। दूसरो के लिखे तथा टाइप किए पत्रो और लेखो को भी वे स्वय देखते थे। यहा तक कि महादेव देसाई तक अपने लेख तब तक नही भेज सकते थे, जब तक कि वे सुनकर उसे मजूर न कर लें। इस समय तक बापू द्वारा लिखित पुस्तको की सख्या सौ से ऊपर है।

मुद्रक सोहन प्रिंटस, शाह